ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-9* December-2021
Anthology : The Research

विभिन्न क्षेत्रों में जैन संतों का दृष्टिकोण : एक विश्लेषण
Approach of Jain Saints in Different Fields: An Analysis

Paper Submission: 01/12/2021, Date of Acceptance: 16/12/2021, Date of Publication: 17/12/2021

तरूण जैन
पूर्व शोध छात्र,
इतिहास विभाग,
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय,
भोपाल, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश

संत कहते हैं कि धर्म चर्चा का नहीं चर्चा का विषय है। धर्म के अनुसार जीना ही धर्म का मूल भाव है। जैन आचार्यों द्वारा किया गया चिंतन यही कहता है कि धर्म पुस्तकों में नहीं, मंदिरों में नहीं, कर्मकाण्डों में नहीं, मूर्तियों में नहीं बल्कि व्यवहार में होता है। ये सभी धर्म के माध्यम हो सकते हैं, मार्गदर्शक हो सकते हैं लेकिन सही धर्म जिया जाता है। धार्मिक ग्रंथों के ज्ञान को आत्मसात कर आत्मज्ञान बना लो। ईश्वर को मंदिर में नही मन-मंदिर में विराजमान करो। परमात्मा को मूर्तियों में नहीं वरन् अपनी आत्मा में ढूढ़ने का प्रयत्न करो। मूल्यों पर चलो। नैतिकता को मत छोड़ो। संत कहते हैं कि उपरोक्त बातें ही भारतीय चिंतन का निचोड़ है।

Saints say that religion is not a matter of discussion but a matter of discussion. The essence of religion is to live according to religion. The contemplation done by Jain masters says that religion is not in books, not in temples, not in rituals, not in idols but in practice. All of them can be mediums of religion, they can be guides but true religion is lived. Make self-knowledge by imbibing the knowledge of religious texts. Do not place God in the temple but in the mind-temple. Try to find God not in idols but in your soul. Let's go to the values. Don't give up on ethics. The saints say that the above things are the essence of Indian thought.

मुख्य शब्दः जैन, दर्शन, संतों, धर्म, धर्मात्मा, संस्कृति, राजनीति ।
Keywords: Jainism, Philosophy, Saints, Dharma, Dharmatma, Culture, Politics.

प्रस्तावना

जैन सम्प्रदाय के मार्गदर्शक जैन संत ही हैं। जैन धर्म में होने वाले सभी प्रमुख कार्य जैन संतों की आज्ञा तथा आर्शीवाद से ही सम्पन्न होते हैं। चाहे नए मंदिर निर्माण का कार्य हो, पंच कल्याण हो, विधान हो, जिन प्रतिमा की स्थापना हो आदि कोई भी महत्वपूर्ण कार्य हो, जैन आचार्यों व साधुओं के मार्गदर्शन में ही ये कार्य सम्पन्न होते हैं। एक प्रकार से देखा जाए तो जैन समाज का नेतृत्व जैन संतों के द्वारा ही किया जाता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि आजकल जैन संतों का रूख जैन समाज ही नहीं सारे अखिल भारतीय समाज की तरफ हो गया है। जैन संत किसी जाति विशेष की नहीं बल्कि सारे भारत के उत्थान के लिए प्रयत्नशील हैं। आचार्य विद्यासागर, आचार्य महाप्रज्ञ, मुनि तरूण सागर, मुनि प्रमाण सागर, मुनि चिन्मय सागर, क्षुल्लक ध्यान सागर आदि संतों के प्रवचन तथा साहित्य से अखिल भारतीय समाज के उत्थान की बात दृष्टिगोचर होती है। जैन संतों ने भारत के दर्शन, धर्म, संस्कृति, समाज, राजनीति, साहित्य तथा कला के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान दिया है।

अध्ययन का उद्देश्य

विभिन्न क्षेत्रों में जैन संतों के दृष्टिकोण का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर उसकी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासांगिकता का निर्धारण करना।

दर्शन के क्षेत्र में

दर्शन का शाब्दिक अर्थ है - देखना। दर्शन वही कर सकता है, जिसके चक्षु खले हुए हों। संत कहते हैं - यदि तुम किसी वस्तु को देखना चाहते हो तो तुम्हें दृष्टा बनना होगा और यदि तुम उस वस्तु को सही तरीके से, अनेकांतता से देखना चाहते हो तो तुम्हें सम्यक् दृष्टि बनना होगा। सम्यकत्व का केन्द्र बिन्दु अंर्तआत्मा है। जैन संतों ने विश्व के सभी विषयों को सभी आयामों से देखने का प्रयत्न किया है।

अन्य शब्दों में कहा जाए तो जो कुछ भी मनुष्य के तर्क, बुद्धि और अर्न्तदृष्टि से अधिगत हुआ वही दर्शन है। दर्शन का अर्थ है 'दिव्य दृष्टि'। जीवन के दुःखों को दूर करना ही दर्शन का मूल उद्देश्य है। भारतीय दर्शनों के अनुसार केवल सत्य की खोज और उनका ज्ञान प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है किन्तु उसे आत्मसात् कर तदनुरूप जीना भी आवश्यक है। यही कारण है कि भारत में धर्म और दर्शन सहचर और सहगामी रहे हैं। दर्शन सत्ता की मीमांसा करता है और उसके स्वरूप को तर्क एवं विचार से ग्रहण करता है, जिससे कि मोक्ष की उपलब्धि हो। धर्म उस तत्व को प्राप्त करने का व्यवहारिक उपाय है। दर्शन हमें आदर्श लक्ष्य को बताता है, धर्म उसको प्राप्त करने का रास्ता है। दर्शन द्वारा तत्व प्रतिपादित होते हैं, धर्म उनका क्रियान्वयन करता है, हेय को छोड़ता है, उपादेय को ग्रहण करता है, दर्शन और धर्म दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। दर्शन की अनेक धाराएं हैं। उनका वर्गीकरण भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के रूप में किया जा सकता है। जैन दर्शन अध्यात्मवादी दर्शन

है। भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन का अपना एक विशिष्ट और गौरवपूर्ण स्थान है। आचार में अहिंसा, विचार में अनेकांत, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह जैन दर्शन के ये चार महान् स्तम्भ हैं, जिन पर जैन दर्शन का महाप्रसाद खड़ा है। जैन दर्शन एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है।

जैन दर्शन में गहनतापूर्वक इस बात की चर्चा की गई है कि तत्व, द्रव्य, जीव, अजीव आदि का स्वरूप क्या है? कर्म बंध की प्रक्रिया तथा उसका फलदान इस दर्शन में विस्तार से बताया गया है। जैन दर्शन यह मानता है कि मनुष्य जन्म कर्मों से मुक्ति का एक सुनहरा अवसर है। यदि इस अवसर का लाभ ले दिया जाये तो कर्मों की निर्जरा हो सकती है। जैन दर्शन का मूल लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है, जो कि आत्मा की परम अवस्था भी मानी जाती है। अन्य शब्दों में जैन दर्शन आत्मा को परमात्मा में परिणत करने का मार्ग बतलाता है।

धर्म के क्षेत्र में

सरल शब्दों में देखा जाए तो, दर्शन यदि विचारधारा या सोच है तब धर्म उसके क्रियान्वयन की पद्धति है। धर्म का दूसरा अर्थ - स्वभाव है। जिन के स्वभाव में जो विश्वास करें वह जैन है। जैन धर्म कर्मकाण्डों पर नहीं, बल्कि आचरण पर जोर देता है। संत कहते हैं कि आत्म स्वभाव के दस लक्षण हैं - उत्तम क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच, सत्य , संयम, तप, त्याग, आकिच्चन्य और ब्रम्हचर्य। इन दस लक्षणों को ही सही धर्म माना गया है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि इन दस लक्षण धर्मों को जीवन में आत्मसात कर उसे क्रियान्वित करना होगा। संत कहते हैं कि धर्म जीवन का आधार है। धर्म किसी सम्प्रदाय या जाति विशेष की बपौती नहीं है। धर्म तो नैतिक मूल्यों को चरितार्थ करने का ही दूसरा नाम है। सारे सम्प्रदाय, जाति, धर्म, पंथ आदि में एक ही चीज़ उभयनिष्ठ है और वह है - नैतिक मूल्य। यदि नैतिक मूल्यों को आत्मसात नहीं किया तो सारी पूजा, विधान, कर्मकाण्ड व्यर्थ होंगे। आजकल प्रायः लोगों को यह कहते हुए सुना गया है कि धर्म तो बहुत करते हैं, किन्तु फल नहीं मिलता। धर्म कोई ठीक से करे और फल न मिले, ऐसा हो नहीं सकता। दीपक प्रज्जवलित किया जाए और अंधेरा न छंटें, यह असंभव है।

जिस व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता उन्हें भूलकर भी धर्मात्मा मत मान बैठना। वे धार्मिक हो सकते हैं धर्मात्मा नहीं। धार्मिक और धर्मात्मा दोनों एक नहीं हैं। धर्मात्मा होना अलग बात है और धार्मिक बनना अलग बात। धार्मिक बनना सहज है, धर्मात्मा होना कठिन। धर्मात्मा वह है, जो धर्म को जीता है। धार्मिक वह है, जो धर्म की क्रिया करता है। बड़ा फर्क है, धर्म क्रिया करने और धर्म को जीने में। धर्म की क्रिया करने वालों का धर्म धार्मिक क्रियाओं तक सीमित रहता है। धर्म को जीने वालों का धर्म उनके आचरण का अंग बनता है, उनकी एक-एक श्वास धर्म से अनुप्राणित रहती है। प्रत्येक विचार और व्यवहार में धर्म प्रतिबिम्बित रहता है।[2]

जीवन जीने की कला सिखाने वाले अनेक धर्म इस जगत में देखे जा सकते हैं, किंतु मरने की कला, उत्साहपूर्वक मृत्यु को अंगीकार करने की कला सिखाने वाला एकमात्र धर्म जैन धर्म ही है। इस कला का ज्ञान सल्लेखना अथवा समाधिमरण है। उपसर्ग होने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर, वृद्धावस्था आने पर, निष्प्रतिकारक रोगों के उत्पन्न होने पर, निज धर्म, व्रतों की रक्षा के लिए, शरीर का त्याग करना सल्लेखना कहा जाता है।[3]

संस्कृति के क्षेत्र में

संस्कृति शब्द संस्कृत की 'कृ' धातु से 'क्तिन' एवं 'सम' उपसर्ग को जोड़कर बना है। वास्तव में संस्कृति शब्द का अर्थ अत्यंत ही व्यापक है। देखा जाए तो 'संस्कृति' एक अमूर्त पद है, जिसे वैज्ञानिक पदों की भांति परिभाषा की सीमा में बांधना समीचीन प्रतीत नहीं होता। यूनेस्कों के अनुसार "संस्कृति को आमतौर पर कला का रूप माना जाता है। हम नैतिक मूल्यों और मानवीय संबंधों में लोगों के व्यवहार को संस्कृति से जोड़ते हैं। इसे किसी समाज या किसी सामाजिक समूह के हित में किए जाने वाले कार्य, व्यवहार और प्रवृत्ति से भी उपलक्षित किया जाता है। संस्कृति से हमारा तात्पर्य जीवन स्तर, निवास और वेशभूषा, भौतिक अनुशीलन से है। हम भाषा, विचार, कार्य,..... की संस्कृति से इसका आकलन करते हैं।"[4]

संस्कृति के मूलभूत घटक हैं - मूल्य, मान्यताएँ, संकेत (जैसे भाषा), लोक साहित्य, धर्म एवं विचारधाराएँ। संस्कृति मनुष्यों के समुदाय में निहित होती है और इसका निकटतम संबंध उच्चतम मूल्यों से होता है। समझने के स्तर पर इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि किसी समाज में निहित उच्चतम मूल्यों की चेतना, जिसके अनुसार वह समाज अपने जीवन को ढालना चाहता है, संस्कृति कहलाती है।[5] जैन संस्कृति में पाँच सिद्धांतों के अनुपालन पर जोर दिया जाता है - सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रम्हचर्य।

जैन साधुओं ने माना है कि मोक्ष प्राप्ति हेतु तीन चीजें आवश्यक हैं - सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र। तत्वार्थसूत्र में कहा गया है कि इन तीनों आदर्शों का पालन करने से आत्मा अपनी परम अवस्था में पहुंच जाती है।

जैन धर्म का ध्वज पाँच रंग का है। पाँच रंग श्वेत, लाल, पीला, हरा और नीला क्रमशः अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी के प्रतीक माने जाते हैं। जैन ध्वज परस्पर प्रेम, विश्व शांति तथा मानव धर्म जैसे आदर्शों के बारे में भी कहता है। राष्ट्रीय चिन्ह के धर्म चक्र में 24 आरे, 24 तीर्थकरों को दर्शाते हैं तथा बैल, घोड़ा और हाथी क्रमशः ऋषभदेव, संभवनाथ तथा अजितनाथ तीर्थकरों के

चिन्ह हैं। जैन धर्म का 'ॐ' त्रिकाल पंच परमेष्ठी को दर्शाता है। जैन पंरपरा के अनुसार 'ॐ' शब्द में पंच परमेष्ठी का वास होता है। इसलिए हर मंत्र, मांगलिक कार्य आदि में 'ॐ' चिन्ह् को शुभ माना जाता है। जैन संस्कृति में स्वास्तिक प्राचीन काल से मंगल प्रतीक माना जाता है। इसलिए किसी भी शुभ कार्य को करने से पहले स्वास्तिक चिन्ह अंकित किया जाता है। स्वास्तिक का चिन्ह मोहनजोदड़ो के उत्खनन से प्राप्त अनेक मुहरों में देखा गया है। यह सौभाग्य का प्रतीक है।[6] सन् 1981 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरागाँधी ने श्रवण बेलगोला में भगवान बाहुबली के महामस्तकाभिषेक समारोह के बारे में संसद सदस्यों से कहा था - "मैं भारतीय विचारों की एक प्रमुख धारा के प्रति श्रृद्धा व्यक्त करने वहाँ गई थी। जिसने भारतीय इतिहास व संस्कृति पर गहरा प्रभाव छोड़ा है और स्वतंत्रता संग्राम में अपनाए गए तरीके भी इससे प्रभावित हुए हैं। गांधीजी भी जैन तीर्थकरों द्वारा प्रतिपादित अहिंसा व अपरिग्रह के सिद्धांतों से प्रभावित हुए। ..... केवल मैं ही नहीं, सारा राष्ट्र जैन है क्योंकि हमारा राष्ट्र अहिंसावादी है और जैनधर्म अहिंसा में विश्वास रखता है। जैन धर्म के आदर्श के रास्ते को हम नहीं छोडेंगे।"[7] जैन धर्म का एक विशेष पर्व जिसने भारतीय संस्कृति को एक नई पहचान दी वह है - क्षमावाणी पर्व। दशलक्षण पर्व के अंतिम दिन हृदय से आपस में क्षमा मांगते हैं तथा क्षमा करते हैं। जाने-अनजाने में की गई गलती पर क्षमा माँग कर व्यक्ति क्रोध व बैर कषायों को खत्म करने का प्रयास करता है। कहा भी गया है - "क्षमा वीरस्यभूषणम्।" इस प्रकार यह पर्व सिर्फ जैन नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति की एक विशेष पहचान बन गया है।

समाज के क्षेत्र में

यह बात पूर्णतः सत्य है कि जैन संतों का मुख्य लक्ष्य लोगों को आत्म कल्याण तथा मोक्ष मार्ग की तरफ प्रवृत्त करना है। आत्म कल्याण कैसे होगा, महत्वपूर्ण प्रश्न यह है। आजकल के संत यह विश्वास करने लगे हैं कि अध्यात्म से पहले समाज को नैतिकता का पाठ पढ़ना होगा क्योंकि अध्यात्म रूपी महल में पहुंचने से पहले नैतिक मूल्यों के रास्तों से गुजरना अनिवार्य है क्योंकि सभी धर्मों में नैतिक मूल्य उभयनिष्ठ हैं।

आज जैन संतों के प्रवचन में समाज के कल्याण की बात ज्यादा होती है क्योंकि संत जानते हैं कि समाज में व्याप्त बुराईयों, कुरीतियों तथा व्यसनों से मुक्ति के बिना एक आदर्श समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारत में अब कई राज्य ऐसे हैं जिन्होंने पूर्ण रूप से शराब, गुटखा, तम्बाकू जैसी वस्तुओं पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया है। इसके साथ ही कई राज्यों ने गौ-हत्या पर भी पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया है। इन सभी के पीछे कहीं न कहीं महान संतों की प्रेरणा दिखाई देती है।

जैन संतों की ही प्रेरणा से पक्षियों के लिए अनूठा चिकित्सालय लगभग 80 वर्ष पूर्व श्री दिगम्बर जैन लाल मंदिर परिसर, चाँदनी चौक, दिल्ली में स्थापित किया गया था। यह चिकित्सालय आज विकसित और आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों से पक्षियों की सेवा कर रहा है।[8]

संत कहते हैं कि समाज में यदि स्नेह व वात्सल्य का भाव फैलाना है तो हमेशा मधुर वचन बोलो। जब तुम्हारे मीठे बोलने से सब संतुष्ठ होते हैं तो वहीं बोलो न, वचनों में कौन-सी दरिद्रता है। अरे शब्द का तो अपूर्ण भण्डार है तुम्हारे अंदर, उस भण्डार का प्रयोग करो। अच्छे शब्दों का प्रयोग करो, बुरे शब्द अपने मुख से कभी न निकालो। हमेशा मधुर बोलो और उस भावना को हमेशा अपने सामने रखो कि - "फैल प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे। अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे।"[9]

राजनीति के क्षेत्र में

जैन संत कहते हैं कि यदि राजनीतिमें धर्म तथा नैतिक मूल्यों के मूलभूत सिद्धांतों का समावेश कर दिया जाए तो राजनीति कभी दिग्भ्रमित नहीं हो सकती। कहा गया है कि सत्ता सुख का नहीं, वरन् सेवा का माध्यम है। इस बात को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता कि सत्ता में मादकता है, उन्माद है, चकाचौंध है। सत्ता बरबस ही जन सामान्य को अपनी ओर आकर्षित करती है।

यह बात सत्य है कि यदि सत्ता सुख के आदि हो गये तो सेवा का भाव लुप्त हो जाएगा। व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण पुनः सत्ता में लौटना चाहेगा। सेवा के लिए त्याग, समर्पण तथा संवेदना का भाव जरूरी है। इसलिए संत कहते हैं कि तुम सत्ता को नियंत्रित करो न कि सत्ता सुख तुम्हें नियंत्रित करे।

इतिहास में जितने भी राजनीति के महान् ज्ञाता हुए हैं चाहे वे आचार्य चाणक्य हों या महात्मा गांधी। उन्होंने कभी सत्ता के प्रमाद को कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। उन्होंने त्याग व तपस्या का जीवन व्यतीत किया और राजनीति में अपनी विचारधारा का लोहा मनवाया।

एक छत्र हिमवान से समुद्र पर्यन्त छह खण्ड में शासन करने वाले ऋषभ पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर ही इस देश का नाम भारत वर्ष प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध इस देश को सम्राट खारवेल ने भी अपने ऐतिहासिक शिलालेख में भारतवर्ष लिखकर चक्रवर्ती भरत के काल से लेकर खारवेल के युग तक को भारतवर्ष नाम से प्रमाणित किया। 18 सितम्बर 1949 की संविधान परिषद की मीटिंग में स्वतंत्र देश ने अपना पुरातन पौराणिक नाम भारतवर्ष ही संविधान में रखा।[10] यद्यपि जैनधर्म अहिंसा प्रधान है। दया वृत्ति को धारण करने वाला जैन श्रावक एक चींटी को भी नहीं मारता, किंतु राष्ट्र के सम्मान पर जब-जब आँच आई तब-तब जैन धर्मावलंबी कभी पीछे नहीं रहे। भारत की आजादी के आंदोलन में लगभग 20 जैन शहीदों ने अपना बलिदान देकर तथा लगभग 5000 जैन पुरूष-महिलाओं ने संघर्ष करते हुए जेल जाकर आजादी के मार्ग को प्रशक्त किया।[11] देखा जाए तो विश्व विजेता सिंकदर कल्याण जैन मुनि से प्रभावित था। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य जैन थे। खारवेल तथा

विक्रमादित्य जैसे राजाओं का कुलधर्म और राजधर्म भी जैन था। महात्मा गांधी के गुरू रामचन्द्र भाई भी जैन थे।
इस प्रकार देखा जाए तो जैन संतों, विद्वानों ने काफी स्तर तक राजनीति को प्रभावित किया था और आज भी कर रहे हैं।

साहित्य के क्षेत्र में

जैन संतों ने अनेक ग्रंथ जैन धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में लिखे हैं। इस कारण इसका विपुल भण्डार है। जैन धर्म के अधिकांश ग्रंथ प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश जैसी प्राचीन भारतीय भाषाओं में निबद्ध है। कन्नड़, मराठी, तमिल और अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रचुर मात्रा में जैन साहित्य रचा गया है।
आधुनिक हिन्दी भाषा में भी अनेक पुस्तकें लिखी गई है। जैनाचार्यो ने प्रायः जन प्रचलित भाषा में ही अपने भावों को अभिव्यक्ति दी है।[12] श्री धरसेनाचार्य जी के शिष्य और श्रुत परम्परा के प्रवर्तक आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि जी मुनिराजों द्वारा ईसा की पहली शताब्दी में षट्खण्डागम ग्रन्थ की रचना की गई। इस ग्रंथ के प्रथम पाँच खण्ड अर्थात् जीवस्थान, क्षुद्रकबंध, बंधस्वामित्व, वेदनाखण्ड और वर्गणाखण्ड इनमें 6000 श्लोक प्रमाण सूत्र हैं। छठवें खण्ड को महाबंध कहा जाता है। वह 30,000 श्लोक प्रमाण सूत्र के माध्यम से रचा गया था। षट्खण्डागम एवं कसायपाहुड इन दो महान ग्रंथों की टीकाएँ अनेक आचार्यों ने लिखी है। उनमें आठवीं शताब्दी में आचार्य वीरसेन स्वामी कृत प्रथम पाँच खण्डों पर धवला नामक टीका लिखी गई, जो 72,000 श्लोक प्रमाण हैं एवं संस्कृत और प्राकृत भाषा मिश्रित भाषा में है।[13] भारत की सबसे प्राचीन लिपि ब्राह्मी लिपि का ज्ञान भगवान आदिनाथ ने अपनी पुत्री ब्राहमी को करवाया था। उन्हीं के नाम पर ब्राहमी लिपि का नाम पड़ा।
जो धर्म के अधिकांश साहित्य प्राकृत भाषा में रचे गए थे। यह एक लोक भाषा है। अतः इसका अस्तित्व उतना ही पुराना है, जितना कि लोक। संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का क्षेत्र व काल विस्तृत रहा है। तीर्थंकर जैसे दिव्य पुरूषों ने जन-जन की समझ में आने वाली जनभाषा के द्वारा ही जगत् में धर्म की गंगा प्रवाहित की है। वैदिक सम्प्रदाय ने केवल संस्कृत भाषा को अपनाया, अतः किसी भी वैदिक विद्वान का बनाया हुआ कोई प्राकृत भाषा का ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता, किंतु जैन सम्प्रदाय ने किसी भी भाषा में अरूचि प्रकट नहीं की। अतएव जैन विद्वानों ने भारतीय मूल भाषा प्राकृत में भी विपुल एवं महत्वपूर्ण साहित्य की रचना की तथा संस्कृत भाषा में भी व्याकरण, साहित्य, तर्क, छंद, अलंकार, कोश, वैद्यक, ज्योतिष, गणित आदि समस्त विषयों पर अनुपम ग्रंथों की रचना की। पुरा साहित्य की प्रकृति, पुराकालीन धर्म, दर्शन तथा जीवन पद्धति को समझने के लिए प्राकृत को समझना आवश्यक है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था - "प्राकृत भाषा के अभ्यास के बिना भारत के इतिहास का ज्ञान अधूरा है।"[14]

कला के क्षेत्र में

यद्यपि जैन संतों का मुख्य कार्य अध्यात्म के क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित करना है तथापि उन्होंने वास्तुकला तथा ज्योतिष के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया है। जैन धर्म में मूर्तिकला पर भी विशेष ध्यान दिया गया है।
यह बात मौयत्तर काल की है जब जैन तीर्थकर की मूर्ति बनने लगी और इसे मथुरा कला नाम दिया गया। जैन धर्म के अनुयायियों ने मथुरा में मूर्तिकला की एक शैली को प्रश्रय दिया, जहां शिल्पियों ने महावीर की एक मूर्ति बनाई। यह कला शैली जो मथुरा शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई ई.पू. पहली शताब्दी के अंत में आरंभ हुई। कालान्तर में कुषाण शासकों का प्रश्रय पाकर यह फली-फूली। मथुरा शैली की मूर्तियों में आध्यात्मिकता एवं भावुकता की प्रधानता थी। यह मथुरा कला विशुद्ध भारतीय कला है।[15] जैन संतों ने वास्तुशास्त्र पर भी गहरा चिंतन किया है। वत्थु विज्जा (वास्तु विद्या) नामक शास्त्र में यह बताया गया है कि किस दिशा का क्या महत्व होता है। यह संकलन आर्यिका विशुद्धमती माताजी ने किया था। वैज्ञानिक विद्याओं की समृद्ध श्रृंखला में 'वास्तुविद्या' भी एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में मानव को सुख पहुंचाने में सहायक रही है। पर आज हमारे ही देश में इसे विस्मृत कर दिया गया है। इस विषय से अनजान मनुष्य मनमाने ढंग से अपने आवासों का निर्माण कर अनेक प्रकार से त्रस्त हो रहा है। वर्तमान में लोगों की इस विषय के प्रति फिर से रूचि जागृत ही नहीं हुई है अपितु इस विषय का अपने जीवन में उपयोग करने को भी आतुर हैं। भवन के लिए भूमि चयन, शल्य शोधन, भवन निर्माण के दिशागत निर्देश, भवन निर्माण मुहूर्त, भवनों के प्रकार, अशुभ ग्रहों के लक्षण और फल, चौदह प्रकार के वेधों के लक्षण, ग्रहों का द्वार-विवेचन, घर में कौन-सा स्थान कहाँ? अर्थात् पानी, रसोई, बैठक, पूजा स्थल, अध्ययन स्थान, तिजोरी स्थान कहाँ तथा किस दिशा में होने चाहिए आदि विषय बहुत अच्छे ढंग से समझाये गये हैं। घर ही नहीं व्यवसाय स्थल, दुकान तथा विद्यालय आदि को भी इसमें सम्मिलित किया गया है।[16] भारतीय ज्योतिष नामक ग्रंथ डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा लिखा गया एक महत्वपूर्ण शास्त्र है। शुभ घड़ी, लग्न और मुहूर्त शोधन के विषय में यह विस्तृत व्याख्या करता है।
यह ग्रन्थ ज्योतिष शास्त्र के इतिहास का दिग्दर्शन कराता है। ज्योतिष के सारे सिद्धांतों का विवेचन करता है, प्रमुख ज्योतिर्विदों का ऐतिहासिक क्रम से परिचय प्रस्तुत कराता है और विवेचन विषयक दृष्टि की व्यावहारिकता इस कौशल से साधी है कि मननपूर्वक स्वाध्याय और अभ्यास करने वाला व्यक्ति स्वयं कुण्डलियाँ बना सकता है, भाग्यफल प्रतिपादित कर सकता है। इष्ट-अनिष्ट के मूलभूत

कारणों को और उनके क्रियान्वयन की प्रक्रिया को इतनी सहजता से समझाने वाला और कोई ग्रंथ दुर्लभ है।[17]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *प्रमाण सागर जी, मुनि श्रीः जैन धर्म और दर्शन, 1999, पृ. 1, पाँचवा संस्करण।*
2. *श्री प्रमाण सागर जी, मुनिः अंतस् की आँखें, पृ. 2.*
3. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा, धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ. 39*
4. *राजाराम, कल्पनाः भारतीय संस्कृति, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 2010, पृ. 2.*
5. *राजाराम, कल्पनाः भारतीय संस्कृति, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 2010, पृ. 2.*
6. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा (भाग-2), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ. 8*
7. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा (भाग-2), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ.9*
8. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा (भाग-1), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ. 26*
9. *श्री प्रमाण सागर जी, मुनिः दिव्य जीवन का द्वार, पृ. 43.*
10. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा (भाग-1), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ. 7*
11. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा (भाग-1), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ. 8*
12. *प्रमाण सागर जी, मुनिः जैन तत्वविद्या, पृ. 7.*
13. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा (भाग-1), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ. 15*
14. *जैन, भरतः जैनत्व की गौरव गाथा (भाग-1), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ. 12*
15. *सिंह, नागेन्द्र प्रतापः भारतीय इतिहास, किरन कम्पटीशन टाइम्स, इलाहाबाद, 2007, पृ. 39.*
16. *विशुद्धमती माताजी, आर्यिकाः वत्थु विज्जा, जोधपुर, 1999, पृ. 9.*
17. *शास्त्री, डॉ. नेमिचन्द्रः भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2004, पृ* 1.